International Journal of Professional Development
Vol.10,No.1,Jan-June2021 ISSN: 2277-517X (Print), 2279-0659 (Online)
Impact Factor: 3.017

संस्कृत वाङ्मय में स्वास्थ्य सन्देश और चेतना

डॉ. सीता राठौर
एसो. प्रो., संस्कृत विभाग, एम.एम.एच. कॉलेज, गाजियाबाद
E-mail: sitssager22@gmail.com

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृत है। यह मानव को पूर्णत्व का बोध कराने वाली संस्कृति है। इस सनातन संस्कृति का ही सम्पूर्ण कलेवर संस्कृत वाङ्मय में सुरक्षित है। संस्कृत वाङ्मय की आचार–संहिता मानव मात्र के स्वास्थ्य, उत्थान एवं कल्याण के निमित्त बनी, एक व्यापक दृष्टि के साथ बनी, किसी जाति विशेष या स्थान विशेष के लिए नहीं। वेदों से लेकर वर्तमान संस्कृत साहित्य का यही लक्ष्य रहा है कि मानव के स्वास्थ्य और सर्वतोमुखी उन्नयन से यह वसुन्धरा परिपूरित रहे। संस्कृत साहित्य में मानव जीवन का सम्पूर्ण दर्शन सुरक्षित है, जो प्रकृति के साथ–साथ विस्तार प्राप्त करता रहा है। शारीरिक स्वास्थ्य से लेकर आत्मा के आनन्द तक की अभिव्यक्ति देने वाला यह साहित्य सम्पूर्ण मानवता के लिए वरदान सिद्ध हुआ है। इसमें जीवन के शाश्वत मूल्यों का अपरिमित सौन्दर्य सन्निविष्ट है। इस साहित्य में हमारे राष्ट्रीय संस्कार भी बोलते हैं। संस्कार, वस्तुतः निरन्तर परिष्करण की अनवरत प्रक्रिया है और इस प्रक्रिया का संचित मधु ही संस्कृति है, जो संस्कृत साहित्य में समग्रता में रूपायित हुई है।

सुश्रुतसंहिता का कथन है कि जब त्रिदोष, सप्तधातु, रस, रक्त, माँस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र तथा मल सम होते हैं, तब देह स्वस्थ और नीरोग होता है। स्वस्थ व्यक्ति की परिभाषा आचार्य सुश्रुत ने निम्न प्रकार से दी है–

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते[1]।।

अर्थात् स्वस्थ व्यक्ति वह है जिसमें वातादि दोष, त्रयोदश अग्नियाँ (7 धात्वग्नियाँ + 5 महाभूताग्नियाँ + 1 जठराग्नि), सप्तधातुएँ सम अवस्था में हों, मलमूत्र का विसर्जन निर्बाधरूप से हो रहा हो, आत्मा, इन्द्रिय एव मन प्रसन्न हों। इस प्रकार शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से स्वस्थ व्यक्ति ही स्वस्थ है।

आयुर्वेद शब्द आयु एवं वेद इन दो शब्दों के मेल से बना है–

- 'एति गच्छति इति आयुः' जो निरन्तर गतिमान रहे, उसे आयु कहते हैं।
- 'आयुः जीवितकालः'[2] जीवित काल को आयु कहते हैं।
- 'चैतन्यानुवर्तनमायुः'[3] जन्म से लेकर चेतना के बने रहने तक के काल को आयु कहते हैं।
- 'शरीरजीवयोर्योगो जीवनम्, तेनावच्छिन्नः काल आयुः' शरीर एवं जीव के संयोग को जीवन कहते हैं तथा जीवन से संयुक्त काल को आयु कहते हैं।

शरीरेन्द्रियसत्वात्मसंयोगो धारि जीवितम्।
नित्यगश्चानुबन्धश्च पर्यायैरायुरुच्यते[4]।।

अर्थात् शरीर (Physical Body), इन्द्रिय (Senses),सत्व (Psyche) एवं आत्मा (Soul) के संयोग को आयु कहते हैं। धारि, जीवित, नित्यग तथा अनुबन्ध ये आयु के पर्याय होते हैं।

वेद से तात्पर्य है ज्ञान। इस प्रकार आयुर्वेद का अर्थ जीवन का विज्ञान (Science of Life) –

'आयुषो वेदः आयुर्वेदः' या
'आयुर्वेदयतीत्यायुर्वेदः'।

आयुर्वेद में आयु से सम्बन्धित सर्वांगीण ज्ञान का वर्णन किया गया है। आरोग्यावस्था बनाये रखना ही आयुर्वेद का लक्ष्य है। आयुर्वेद के प्रमुख दो प्रयोजन हैं–

- स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा।
- रोगी के रोगों का शमन करना।

प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनं च[5]।

आयुर्वेद में दोषों की साम्यावस्था को आरोग्य एवं विषमावस्था को रोग कहा गया है –

रोगस्तु दोषवैशम्यं दोषसाम्यमरोगता[6]।

आयुर्वेद में व्याधि एवं चिकित्सा का वास्तविक क्षेत्र पंचभौतिक शरीर (मनसहित) एवं आत्मा का समुदायरूप चिकित्स्य पुरुष माना गया है

–पंचमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुषः इति, स एव कर्म पुरुषः चिकित्साधिकृतः।

आयुर्वेद में तीन उपस्तम्भ बतलाये गये हैं –

'त्रय उपस्तम्भा इति–आहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति[7]।'

जब इन तीनों उपस्तम्भों पर सूक्ष्म दृष्टिपात किया जाता है तो ध्यान इस तरफ आकर्षित होता है कि इन तीनों में आहार द्वारा शरीर का मुख्य रूप से या प्रत्यक्षतः पोषण होता है तथा परिणामतः क्रमिक रूप में मन प्रभावित होता है। ब्रह्मचर्य के द्वारा मन में निर्मलता और सौमनस्यता आती है तथा प्रतिलोम क्रम में शरीर की पुष्टि होती है। निद्रा का सम्बन्ध शरीर तथा मन दोनों से है –

यदा तु मनसि क्लान्ते कर्मात्मानःक्लमान्विताः।
विषयेभ्यो निवर्तन्ते तदा स्वपिति मानवः[8]।।

अर्थात् मन जब कार्य करते–करते थक जाता है और इन्द्रियाँ भी कार्य करने से थककर अपने–अपने विषयों से निवृत्त हो जाती हैं, तब मनुष्य को निद्रा आती है। यह निद्रा स्वभावतः सृष्टि के समस्त प्राणियों को अपने वश में करने वाली होती है –

'सा स्वभावत एव सर्वप्राणिनोऽभिस्पृशति[9]।'

सैव युक्ता पुनर्युङ्क्ते निद्रा देहं सुखायुष।
पुरुषं योगिनं सिद्धया सत्या बुद्धिरिवागता[10]।।

अर्थात् यदि निद्रा का सेवन उचित समय पर किया जाता है तो निद्रा शरीर को आयु और सुख से युक्त करती है।

चित्ताक्रान्तं धातुबद्धं शरीर नष्टे चित्ते धातवो यान्ति नाशम्।
तस्माच्चित्तं सर्वतो रक्षणीयं स्वस्थे चित्ते बुद्धयः सम्भवन्ति[11]।।

अर्थात् स्वस्थ देह रहने पर ही क्रमशः स्वस्थ प्राण, स्वस्थ चित्त और स्वस्थ बुद्धि होना सम्भव है, फलतः स्व–स्वरूपबोध सम्भव है। अतः शरीर स्वस्थ होना अत्यन्त आवश्यक है।

मनुष्य की आकांक्षा दीर्घायु प्राप्त करने की आदिकाल से रही है। शताय बनने की कामना वेदों में निम्नलिखित रूप में की गयी है –

पश्येम शरदः शतं जीवेम् शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवामः। शरदः शतमदीनाः स्याम् शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्[12] अर्थात् हम सौ वर्षों तक देखें, सौ वर्षों तक सुनें, सौ वर्षों तक हमारी वाक् शक्ति बनी रहे, सौ वर्षों तक हम स्वावलम्बी बने रहें। आयुर्वेद के मूलस्तम्भ पंचमहाभूत ही हैं। शरीर में वात, पित्त एवं कफ के भी इन पंचमहाभूतों के आधार पर प्रत्येक दोष के पाँच–पाँच भेद किए गए हैं तथा उनके आधार पर शरीर में स्थान, गुण एवं कर्म का वर्णन कर इनके प्राकृत कर्म बताए हैं। यही प्राकृत कर्म जब सम रहते हैं तो प्राकृतावस्था अर्थात् स्वस्थता रहती है और इनके विकृत हो जाने पर अप्राकृतावस्था अथवा अस्वस्थता हो जाती है। चिकित्सा सिद्धान्त में भी पंचमहाभूतों की प्रधानता होने से जो मूलभूत चिकित्सा है उसमें क्षीण हुए दोष एवं महाभूतों की वृद्धि करना और जो बढ़े हुए हैं उनका ह्रास करना तथा सम का पालन करना ही चिकित्सा है –

क्षीणा वर्धयितव्याः वृद्धा ह्रासयितव्याः, समाः पालयितव्याः[13]।

सामान्य हमारे द्वारा जो कुछ भी आहार ग्रहण किया जाता है, उसका जठराग्नि के द्वारा पाचन होने के बाद वह सीधा दोषों को प्रभावित करता है। स्वस्थ व्यक्ति के लिए दोषों की साम्यावस्था अत्यन्त आवश्यक है। मनुष्य इन्द्रियों के वशीभूत होकर अहित विषयों में प्रवृत्त न हो, विशेषतः रसनेन्द्रिय के वशीभूत होकर वह अभक्ष्य भक्षण एवं अति भक्षा में प्रवृत्त न हो। मिथ्या आहार–विहार से अपने शरीर की रक्षा करते हुए मनुष्य को शुद्धता एवं सात्त्विकतापूर्वक उसे परिमित रूप से ही विषयों के सेवन में प्रवृत्ति रखना अभीष्ट है। जो मनुष्य अपने आचरण की शुद्धता और हिताहार–विहार के सेवन की ओर विशेष ध्यान देता है, वह निश्चय ही सुखी और निरोगी जीवन का उपभोग करता है। इस विषय में महर्षि चरक का कथने है–

नरो हिताहारविहारसेवी समीक्ष्यकारी विषयेश्वसक्तः।
दाता समः सत्यपरः क्षमावानाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः[14]।।

सदैव हितकारी आहार और विहार का सेवन करने वाला, हिताहितपूर्वक कार्यों को करने वाला, विषयों के सेवन में आसक्ति नहीं रखने वाला, दान में तत्पर अर्थात् अपरिग्रही, सम मनोवृत्ति रखने वाला, सत्याचण और सत्य भाषण के प्रति निष्ठावान्, क्षमावान्, आप्तपुरुषों की सेवा करने वाला मनुष्य नीरोगी रहता है।

विभिन्न रोगों से शरीर की रक्षा करने के लिए तथा चिरकाल तक शरीर को स्वस्थ, नीरोग एवं आयुष्मान् बनाने के लिए महर्षि चरक ने जहाँ शरीर के लिए आहार– विहार सम्बन्धी नियंत्रण का निर्देश दिया है, वहीं मनोव्यापार को भी स्वास्थ्य के लिए उत्तरदायी बतलाते हुए उसकी चंचलवृत्ति का निग्रह करने का भी निर्देश किया है। बुद्धि की निर्मलता

और वाणी की शुचिता–प्रियता भी शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य रक्षा के लिए नितान्त आवश्यक है। इस सम्बन्ध में महर्षि चरक का मत है–

मतिर्वचः कर्म सुखानुबन्धं सत्त्वं विधेयं विशदा च बुद्धिः।

ज्ञानं तपस्तत्परता च योगे यस्यास्ति तं नानुपतन्ति रोगाः[15]।।

जिसकी बुद्धि (मति), वाणी और कर्म–ये तीनों सुखानुबंधी अर्थात् स्वास्थ्य के अनुकूल अनुबंध बनाये रखने वाले होते हैं, सत्त्व (मनस्) स्वायत्त और बुद्धि निर्मल होती है, जो मनुष्य ज्ञान के लिए प्रयत्नशील रहता है, तपश्चरण में संलग्न होता है और योगसाधना में जिसकी तत्परता होती है अर्थात् जो ज्ञाननिष्ठ, तपोनिष्ठ और योगनिष्ठ होता है, उस पर रोगों का आक्रमण नहीं होता है। योगशास्त्र में प्रथम दो अंग–यम– नियम के द्वारा मनुष्य के आचरण की शुद्धता को लक्ष्य बनाया गया है। इन दोनों अंगों का परिपालन मनुष्य के आचरण को शुद्ध बनाता हुआ उसके मन में सात्त्विक भाव उत्पन्न करता है। सात्त्विक भाव का उद्भव प्रत्यक्षतः मनोविकारों के शमन का द्योतक है, किन्तु इसका पर्याप्त प्रभाव उसके शरीर पर भी पड़ता है। स्वास्थ्य के लिए शरीर और मस्तिष्क दोनों संयम समानरूप से अपेक्षित हैं। असंयत होकर जो अधिक स्वस्थ होने के लिए अधिक भोग करते हैं, अधिक भोग के लिए अधिक संग्रह करते हैं, अधिक संग्रह के लिए अनाचार करते हैं, वे लोक परलोक दोनों में दुःख को प्राप्त करते हैं। कहा भी है– 'अति सर्वत्र वर्जयेत्।'

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सुश्रुत, सूत्र 15/41
2. अमरकोष 2/8/120
3. चरक सूत्र 30/22
4. चरक सूत्र 1/42
5. चरक सूत्र 20/26
6. अष्टांगहृदय सूत्र 1/20
7. चरक सूत्र 11/35
8. चरक सूत्र 21/35
9. सु० शा० 4/33
10. चरक सूत्र 21/38
11. अवधूतगीता 8/27
12. यजुर्वेद 36/24
13. अष्टांगसंग्रह सूत्र 20
14. चरक शारीर 2/46
15. चरक शारीर 2/47